वो दूसरी
मृदुला गर्ग

वो दूसरी

कहानी

मृदुला गर्ग

हर इंसान की ज़िन्दगी में तीन औरतें आती ही आती हैं-माँ, नानी और दादी। मेरी बदक़िस्मती कि मैंने नानी-दादी को न जाना। मेरे माँ-बाप की शादी होने से पहले ही दोनों चल बसीं। मेरा वजूद तक उन्हें क़बूल न रहा।

नाना ने दुबारा शादी नहीं की, इसलिए नानी की जगह,नानी की याद ने ले ली। माँ बराबर उनकी कहानी मुझे सुनाती रहीं और यूँ उनकी शख़्सियत के तिलिस्म को जलाये रखा। एक मैं थी, उलटी खोपड़ी वाली, सुनती नानी की और सोचती दादी की। जिन्हें माँ ने क्या, मेरे बाप ने भी देखा न था। उन्हें जन्म देते ही वे चल दी थीं। माँ ने जब मेरे पिता को जाना तो पार्श्व में दूसरी थीं। ठीक समझे आप, दादी को मरे साल भी न हुआ था कि दादा ने दूसरी शादी कर ली थी। मैंने दादी की तरह जिसे जाना, वही दूसरी थीं।

न-न, हम उन्हें दूसरी कह कर नहीं पुकारते थे। वही, दिवंगत दादी को, मुसलसल, पहली कह कर, ख़ुद को दूसरी बनाये रखती थीं। कभी-कभाक, जब माँ, नानी को छोड़ दादी पर आतीं तो ज़िक्र दूसरी का रहता, पहली का नहीं। दरअसल, पहली के बारे में थोड़ी-बहुत जो जानकारी उन्हें थी, दूसरी की मार्फ़त ही हासिल हुई थी।

माँ बतलाती रही थीं कि जब वे, बहू बन कर उनके घर आयीं तो अगवानी में सास नहीं, सास की जिठानी को खड़े पाया। बड़े लाड़-चाव से उन्होंने बहू को देहरी पार करवायी और लम्बी साँस भर कर कहा, ' आज वह होती तो कितना ख़ुश होती। वैसे ख़ुश यह भी कम नहीं पर...अरे ओ छोटी।'

उनके पुकारने पर, अचानक ऊँचे सुर में गायी जा रही ग़ज़ल थम गयी। माँ के कानों में उस फड़कती ग़ज़ल के बोल, बाहर बारजे में ही पड़ गये थे। पर उसका दूर का भी ताल्लुक़, उनकी सास से हो सकता है, सोचा न था। अब देखा कि एक औरत, जो तौर-तरीक़े से, किसी सूरत, माँनुमा नहीं थी, अधूरा काम छोड़ने की कसमसाहट के साथ, फ़र्श से उठ खड़ी हुई है। और ताया सास कह रही हैं, 'अब, बहू, यही तुम्हारी सास है।'

उस औरत ने उनके पास आने या उन्हें अपने पास बुलाने की पहल नहीं की। वहीं से हाथ उठा कर आशिष्दी, कहा, 'पहली होती तो आज कितना ख़ुश होती ! दूधो नहाओ, पूतो फलो।' कहते न कहते, वे वापस फ़र्श पर थीं, और छूटी ग़ज़ल पकड़ने की ग़रज़ से हारमोनियम सहेज रही थीं।

कुछ ही देर में कमरा, दुबारा, ग़ज़ल की गिरफ़्त में था। खुरदरी पर पुरसोज़ आवाज़ में गायी जा रही ग़ज़ल

में, कुछ ऐसी आशिक़ाना तलब थी कि मुजरे का समाँ बंध गया था। असमंजस में भरी माँ, उन्हें ताकती, खड़ी रह गयी थीं। आगे बढ़ कर पाँव छूने का ख़याल भी ज़ेहन में नहीं आया था। ताया सास ने ज़्यादा वक़्त दिया भी नहीं था। बाँह से थाम कर, रस्में पूरी करवाने, कमरे के दूसरी तरफ़ ले चली थीं।

वह औरत, उसी तरह, सुरों को भरपूर उठान दे कर, ऊँची आवाज़ में गाती रही थी। उसे घेरे जो पाँच-छह औरतें बैठी थीं, उन्होंने भी उठ कर, बहू के पास आने की कोशिश नहीं की थी। उनमें से एक को दिखला कर, ताई ने इतना ज़रूर कहा था, 'वह...तिल्ले के काम की हरी साड़ी में जो है, मेरी भाँजी है, बिट्टो। तुम जानो जैसी बहन की जाई वैसी मेरी।' पर उसे पास नहीं बुलाया था। वह ढोलकी लिये बैठी थी पर फ़िलहाल थाप नहीं दे रही थी। शायद ग़ज़ल के सुर उसकी पकड़ के बाहर हो गये थे। कुछ देर बाद सँभाल पाये...शायद...

'मुँह दिखायी को औरतें आती होंगी, तुम बैठ लो', ताया सास ने माँ को टकोरा था। माँ पीढ़े पर बैठ गयी थीं। पर उनका मन, पूरी तरह, ज़ोम पर आ रही ग़ज़ल में टंका रहा था। यहाँ तक कि आने वालियों की काइयाँ नज़रों और बेलौस फ़िकरों की बाबत सोच, पशेमाँ होने का भी ख़याल न आया था। उस वाक़ये का मुझ से बयान करते हुए, माँ दुबारा उसी मोहपाश में बंध गयी थीं। कहा था, 'तब मेरी समझ में नहीं आया था कि जैसे-जैसे ग़ज़ल उठान पर आ रही थी, उनकी खरखरी आवाज़ में, जो कामुकता पैदा हो रही थी, उसके बारे में, यह तय करना क्यों मुश्किल था कि वह मर्दाना है या औरतनुमा। यानी, वह मर्द को आसक्त करेगी या औरत को ? अब तो ख़ैर जान गयी हूँ कि कामुकता ऐसी क़यामती चीज़ है, जो मर्द-औरत को यकसाँ लुभाती है। तब नहीं जानती थी।'

तभी नीचे से बाक़ायदा मर्द की मर्दाना आवाज़ गूँजी थी, 'उससे कहो, धीरे गाये।' उन्होंने एकदम गाना बन्द नहीं किया होगा, करना मुमकिन नहीं था। बंदिश में सहज रूप से वक़्फ़ा आया होगा। इसीलिए पहले से कहीं धीमी आवाज़ में कहा गया, अगला फ़िकरा, साफ़ सुनायी पड़ गया। 'रण्डियों के मौहल्ले की है न, तभी....' आगे का जुमला, कई मर्दों की मिली-जुली हँसी में खो गया। कहने वाला भी नाराज़ कम, चुहलबाज़ ज़्यादा लगा। सास ने बीच बोल, ग़ज़ल रोक दी, हारमोनियम भी। पर लज्जित या अपमानित, वे नहीं दिखीं। माँ ने अचरज के साथ देखा था, उनके चेहरे पर एक नख़रीली मुस्कान तैर आयी है, जैसे कई बार का सुना आशिकाना जुमला,